श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

भ्रमरगीत (10.47)

तरुण गोपियों का दुःख हरने लेकर प्रभु संदेश,
ब्रज में पहुंचे ज्ञानी उद्धव हरने सबका क्लेश

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंधः

॥ अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥

श्रीशुक उवाच
तं(वँ) वीक्ष्य कृष्णानुचरं(वँ) व्रजस्त्रियः(फ्)
प्रलम्बबाहुं(न्) नवकं(ञ्)जलोचनम् ।
पीताम्बरं(म्) पुष्करमालिनं(लँ) लसन्-
मुखारविन्दं(म्) मणिमृष्टकुण्डलम् ॥ 1॥

प्रलम्+बबाहुं(न्), नवकं(ञ्)जलो+चनम् ,
पुष्+करमा+लिनं(लँ), मुखा+रविन्दं(म्), मणिमृष्ट+कुण्डलम्

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! गोपियों ने देखा कि श्रीकृष्ण के सेवक उद्धवजी की आकृति और वेषभूषा श्रीकृष्ण से मिलती-जुलती है। घुटनों तक लंबी-लंबी भुजाएँ हैं, नूतन कमलदल के समान कोमल नेत्र हैं, शरीर

पर पीताम्बर धारण किये हुए हैं, गले में कमल-पुष्पों की माला है, कानों में मणिजटित कुण्डल झलक रहे हैं और मुखारविन्द अत्यन्त प्रफुल्लित है।

शुचिस्मिताः(ख्) कोऽयमपीच्यदर्शनः(ख्)
कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ।
इति स्म सर्वाः(फ्) परिवव्रुरुत्सुकास्-
तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥ 2॥

कोऽ+यमपीच्+यदर्शनः(ख्), कस्याच्+युतवे+षभू+षणः ,
परिवव्रु+रुत्+सुकास् , तमुत्+तमश्+लो+कपदाम्+बुजाश्रयम्

पवित्र मुसकानवाली गोपियों ने आपस में कहा-'यह पुरुष देखने में तो बहुत सुन्दर है। परन्तु यह है कौन ? कहाँसे आया है ? किसका दूत है ? इसने श्रीकृष्ण जैसी वेषभूषा क्यों धारण कर रखी है ?' सब की सब गोपियाँ उनका परिचय प्राप्त करने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो गयीं और उनमें से बहुत-सी पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों के आश्रित तथा उनके सेवक-सखा उद्धवजी को चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गयीं।

तं(म्) प्रश्रयेणावनताः(स्) सुसत्कृतं(म्)
सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने
विज्ञाय सन्देशहरं(म्) रमापतेः ॥ 3॥

प्रश्रयेणा+वनताः(स्), सुसत्+कृतं(म्), सव्रीडहासे+क्षणसू+नृता+दिभिः,
रहस्+यपृच्छन्+नुपविष्टमा+सने

जब उन्हें मालूम हुआ कि ये तो रमारमण भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश लेकर आये हैं, तब उन्होंने विनय से झुककर सलज्ज हास्य, चितवन और मधुर वाणी आदि से उद्धवजी का अत्यन्त सत्कार किया तथा एकान्त में आसन पर बैठाकर वे उनसे इस प्रकार कहने लगीं।

जानीमस्त्वां(यँ) यदुपतेः(फ्), पार्षदं(म) समुपागतम् ।
भर्त्रेह प्रेषितः(फ्) पित्रोर्-भवान् प्रियचिकीर्षया ॥ 4॥

जानी+मस्त्वां(यँ), समुपा+गतम् , प्रियचिकीर्+षया

'उद्धवजी! हम जानती हैं कि आप यदुनाथ के पार्षद है। उन्हींका संदेश लेकर यहाँ पधारे हैं। आपके स्वामी ने अपने माता-पिता को सुख देनेके लिये आपको यहाँ भेजा है।

अन्यथा गोव्रजे तस्य, स्मरणीयं(न्) न चक्ष्महे ।
स्नेहानुबन्धो बन्धूनां(म्), मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ 5॥

स्नेहा+नुबन्धो, सुदुस्+त्यजः

अन्यथा हमें तो अब इस नन्दगाँव में- गौओं के रहने की जगह में उनके स्मरण करने योग्य कोई भी वस्तु दिखायी

नहीं पड़ती; माता-पिता आदि सगे-सम्बन्धियों का स्नेह बन्धन तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी बड़ी कठिनाई से छोड़ पाते हैं।

अन्येष्वर्थकृता मैत्री, यावदर्थविडम्बनम् ।

पुम्भिः(स्) स्त्रीषु कृता यद्वत्, सुमनस्त्विव षट्पदैः ॥ 6॥

अन्येष्+वर्+थकृता, यावदर्थ+विडम्बनम्, यद्+वत, सुमनस्+स्विव

दूसरों के साथ जो प्रेम सम्बन्ध का स्वाँग किया जाता है, वह तो किसी न किसी स्वार्थ के लिये ही होता है। भौरों का पुष्पों से और पुरुषों का स्त्रियों से ऐसा ही स्वार्थ का प्रेम-सम्बन्ध होता है।

निस्स्वं(न्) त्यजन्ति गणिका, अकल्पं(न्) नृपतिं(म्) प्रजाः ।

अधीतविद्या आचार्य- मृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥ 7॥

निस्+स्वं(न्), अधी+तविद्या, मृत्+विजो, दत्त+दक्षिणम्

जब वेश्या समझती है कि अब मेरे यहाँ आनेवाले के पास धन नहीं है, तब उसे वह धता बता देती है। जब प्रजा देखती है कि यह राजा हमारी रक्षा नहीं कर सकता, तब वह उसका साथ छोड़ देती है। अध्ययन समाप्त हो जाने पर कितने शिष्य अपने आचार्यों की सेवा करते हैं ? यज्ञकी दक्षिणा मिली कि ऋत्विजलोग चलते बने।

खगा वीतफलं(वँ) वृक्षं(म्), भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ।

दग्धं(म्) मृगास्तथारण्यं(ञ्), जारो भुक्त्वा रतां(म्) स्त्रियम् ॥ 8॥

भुक्+त्वा, मृगास्+तथा+रण्यं(ञ्)

जब वृक्षपर फल नहीं रहते, तब पक्षीगण वहाँ से बिना कुछ सोचे-विचारे उड़ जाते हैं। भोजन कर लेने के बादअतिथि लोग ही गृहस्थ की ओर कब देखते हैं ? वन में आग लगी कि पशु भाग खड़े हुए। चाहे स्त्री के हृदय में कितना भी अनुराग हो, जार पुरुष अपना काम बना लेने के बाद उलटकर भी तो नहीं देखता।

इति गोप्यो हि गोविन्दे, गतवाक्कायमानसाः ।

कृष्णदूते व्रजं(यँ) याते, उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ 9॥

गतवाक्का+यमानसाः, उद्+धवे, त्यक्+तलौ+किकाः

गायन्त्यः(फ्) प्रियकर्माणि, रुदत्यश्च गतह्रियः ।

तस्य सं(म्)स्मृत्य सं(म्)स्मृत्य, यानि कैशोरबाल्ययोः ॥ 10॥

गा+यन्+त्यः(फ्), रुदत्+यश्च, गतह्+रियः, कैशो+रबाल्+ययोः

परीक्षित्! गोपियों के मन, वाणी और शरीर श्रीकृष्णमें ही तल्लीन थे। जब भगवान् श्रीकृष्ण के दूत बनकर उद्धवजी व्रजमें आये, तब वे उनसे इस प्रकार कहते-कहते यह भूल ही गयीं कि कौन-सी बात किस तरह किसके सामने कहनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण ने बचपन से लेकर किशोर अवस्था तक जितनी भी लीलाएँ की थीं, उन सबकी याद कर-करके गोपियाँ उनका गान करने लगीं। वे आत्मविस्मृत होकर स्त्री-सुलभ लज्जा को भी भूल गयीं और फूट-फूटकर रोने लगीं।

काचिन्मधुकरं(न्) दृष्ट्वा, ध्यायन्ती कृष्णसं(ङ्)गमम् ।

प्रियंप्रस्थापितं(न्) दूतं(ङ्), कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ 11॥

काचिन्+मधुकरं(न्), कृष्ण+सं(ङ्)गमम् प्रियप्रस्+थापितं(न्), कल्प+यित्वे+दमब्रवीत्

एक गोपी को उस समय स्मरण हो रहा था भगवान् श्रीकृष्ण के मिलन की लीला का। उसी समय उसने देखा कि पास ही एक भौरा गुनगुना रहा है। उसने ऐसा समझा मानो मुझे रूठी हुई समझकर श्रीकृष्ण ने मनाने के लिये दूत भेजा हो। वह गोपी भौंरे से इस प्रकार कहने लगी।

गोप्युवाच

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं(म्) सपत्न्याः(ख्)

कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।

वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां(म्) प्रसादं(यँ)

यदुसदसि विडम्ब्यं(यँ) यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ 12॥

कुचविलुलित+माला+कुङ्कुमश्+मश्रुभिर्नः, मधुपतिस्तन्+मानिनीनां(म्), दूतस्+त्वमी+दृक्

गोपीने कहा- रे मधुप तू कपटी का सखा है; ! इसलिये तू भी कपटी है। तू हमारे पैरों को मत छू। झूठे प्रणाम करके हमसे अनुनय-विनय मत कर। हम देख रही हैं कि श्रीकृष्ण की जो वनमाला हमारी सौतों के वक्षःस्थल के स्पर्श से मसली हुई है, उसका पीला-पीला कुङ्कुम तेरी मूछों पर भी लगा हुआ है। तू स्वयं भी तो किसी कुसुम से प्रेम नहीं करता, यहाँ से वहाँ उड़ा करता है। जैसे तेरे स्वामी, वैसा ही तू! मधुपति श्रीकृष्ण मथुरा की मानिनी नायिकाओं को मनाया करें, उनका वह कुंकुमरूप कृपा- प्रसाद, जो युदशियों की सभा में उपहास करनेयोग्य है, अपने ही पास रखें। उसे तेरे द्वारा यहाँ भेजनेकी क्या आवश्यकता है ?

सकृदधरसुधां(म्) स्वां(म्) मोहिनीं(म्) पाययित्वा

सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ।

परिचरति कथं(न्) तत्पादपद्मं(न्) तु पद्मा

ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ 13॥

सकृद+धरसुधां(म्), सद्यस्+तत्+यजेऽस्+मान् , तत्पा+दपद्मं(न्), उत्तमश्+लो+कजल्पैः

जैसा तू काला है, वैसे ही वे भी हैं। तू भी पुष्पों का रस लेकर उड़ जाता है, वैसे ही वे भी निकले। उन्होंने हमें केवल एक बार - हाँ, ऐसा ही लगता है—केवल एक बार अपनी तनिक सी मोहिनी और परम मादक अधरसुधा पिलायी थी और फिर हम भोली-भाली गोपियों को छोड़कर वे यहाँ से चले गये। पता नहीं; सुकुमारी लक्ष्मी उनके चरणकमलों की सेवा कैसे करती रहती हैं। अवश्य ही वे छैल-छबीले श्रीकृष्णको चिकनी-चुपड़ी बातों में आ गयी होंगी। चितचोरने उनका भी चित्त चुरा लिया होगा।

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं(यँ) यदूना-

मधिपतिमगृहाणामग्रतो नः(फ्) पुराणम् ।

विजयसखसखीनां(ङ्) गीयतां(न्) तत्प्रसं(ङ्)गः

क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ 14॥

मधिपति+मगृहाणा+मग्रतो, विजय+सख+सखीनां(ङ्),

तत्+प्रसं(ङ्)गः, क्षपित+कुच+रुजस्ते, कल्पयन्+तीष्टमिष्टाः

अरे भ्रमर! हम वनवासिनी हैं। हमारे तो घर-द्वार भी नहीं है। तू हमलोगों के सामने यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्ण का बहुत-सा गुणगान क्यों कर रहा है ? यह सब भला हमलोगों को मनाने के लिये ही तो ? परन्तु नहीं-नहीं, वे हमारे लिये कोई नये नहीं हैं। हमारे लिये तो जाने-पहचाने, बिल्कुल पुराने हैं। तेरी चापलूसी हमारे पास नहीं चलेगी। तू जा, यहाँ से चला जा और जिनके साथ सदा विजय रहती है, उन श्रीकृष्ण की मधुपुरवासिनी सखियों के सामने जाकर उनका गुणगान कर वे नयी हैं, उनकी लीलाएँ कम जानती है और इस समय वे उनकी प्यारी हैं, उनके हृदय की पीड़ा उन्होंने मिटा दी है। वे तेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगी, तेरी चापलूसी से प्रसन्न होकर तुझे मुँहमांगी वस्तु देंगी।

दिवि भुवि च रसायां(ङ्) काः(स्) स्त्रियस्तद्दुरापाः(ख्)

कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः(स्) स्युः ।

चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं(ङ्) का

अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥ 15॥

स्त्रियस्+तद्दुरापाः(ख्), कपट+रुचिरहा+सभ्रूविजृम्+भस्य, ह्युत्तमश्+लो+कशब्दः

भौंरे ! वे हमारे लिये छटपटा रहे हैं, ऐसा तू क्यों कहता है ? उनकी कपटभरी मनोहर मुसकान और भौहों के इशारे से जो वश में न हो जायें, उनके पास दौड़ी न आवें-ऐसी कौन-सी स्त्रियाँ हैं ? अरे अनजान। स्वर्ग में, पाताल में और पृथ्वी में ऐसी एक भी स्त्री नहीं है। औरों की तो बात ही क्या, स्वयं लक्ष्मीजी भी उनके चरणरज की सेवा किया करती है। फिर हम श्रीकृष्ण के लिये किस गिनती में हैं ? परन्तु तू उनके पास जाकर कहना कि 'तुम्हारा नाम तो 'उत्तमश्लोक' है, अच्छे-अच्छे लोग तुम्हारी कीर्ति का गान करते हैं; परन्तु इसकी सार्थकता तो इसी में है कि तुम दोनों पर दया करो नहीं तो श्रीकृष्ण तुम्हारा 'उत्तमश्लोक' नाम झूठा पड़ जाता है।

विसृज शिरसि पादं(वँ) वेद्म्यहं(ञ्) चाटुकारै-

रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।

स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका

व्यसृजदकृतचेताः(ख्) किं(न्) नु सन्धेयमस्मिन् ॥ 16॥

रनुनय+विदुषस्+तेऽभ्येत्य, दौत्यैर्+मुकुन्+दात् ,

विसृष्टा+पत्य+पत्यन्+यलोका, व्यसृजद+कृतचेताः(ख्), सन्धे+यमस्+मिन्

अरे मधुकर देख! तू मेरे पैर पर सिर मत टेक मैं जानती हूँ कि तू अनुनय-विनय करने में, क्षमा-याचना करने में बड़ा निपुण है। मालूम होता है तू श्रीकृष्ण से ही यही सीखकर आया है कि रूठे हुए को मनाने के लिये दूत को- सन्देश- वाहक को कितनी चाटुकारिता करनी चाहिये। परन्तु तू समझ ले कि यहाँ तेरी दाल नहीं गलने की। देख, हमने श्रीकृष्ण के लिये ही अपने पति पुत्र और दूसरे लोगों को छोड़ दिया। परन्तु उनमें तनिक भी कृतज्ञता नहीं। वे ऐसे निर्मोही निकले कि हमें छोड़कर चलते बने। अब तू ही बता, ऐसे अकृतज्ञ के साथ हम क्या सन्धि करें ? क्या तू अब भी कहता है कि उनपर विश्वास करना चाहिये?

मृगयुरिव कपीन्द्रं(वँ) विव्यधे लुब्धधर्मा,

स्त्रियमकृत विरूपां(म्) स्त्रीजितः(ख्) कामयानाम् ।

बलिमपि बलिमत्त्वावेष्टयद् ध्वां(ङ्)क्षवद् यस्-

तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥ 17॥

लुब्ध+धर्मा, स्त्रिय+मकृत, बलिमत्+त्वा+वेष्टयद् ,

तदल+मसित+सख्यैर्+दुस्+त्यजस्+तत्कथार्थः

ऐ रे मधुप ! जब वे राम बने थे, तब उन्होंने कपिराज बालि को व्याध के समान छिपकर बड़ी निर्दयता से मारा था। बेचारी शूर्पणखा कामवश उनके पास आयी थी, परन्तु उन्होंने अपनी स्त्री के वश होकर उस बेचारी के नाक-कान काट लिये और इस प्रकार उसे कुरूप कर दिया। ब्राह्मण के घर वामन के रूप में जन्म लेकर उन्होंने क्या किया ? बलि ने तो उनकी पूजा की, उनकी मुँहमाँगी वस्तु दी और उन्होंने उसकी पूजा ग्रहण करके भी उसे वरुणपाश से बांधकर पाताल में डाल दिया। ठीक वैसे ही, जैसे कौआ बलि खाकर भी बलि देनेवाले को अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर घेर लेता है और परेशान करता है। अच्छा, तो अब जाने दे; हमें श्रीकृष्ण से क्या, किसी भी काली वस्तु के साथ मित्रता से कोई प्रयोजन नहीं है। परन्तु यदि तू यह कहे कि 'जब ऐसा है तब तुमलोग उनकी चर्चा क्यों करती हो ?' तो भ्रमर ! हम सच कहती हैं, एक बार जिसे उसका चसका लग जाता है, वह उसे छोड़ नहीं सकता। ऐसी दशा में हम चाहनेपर भी उनकी चर्चा छोड़ नहीं सकतीं।

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-

सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।

सपदि गृहकुटुम्बं(न्) दीनमुत्सृज्य दीना

बहव इह विहं(ङ्)गा भिक्षुचर्यां(ञ्) चरन्ति ॥ 18॥

यदनु+चरित+लीला+कर्णपीयू+षविप्रुट् सकृद+दनविधू+तद्वन्द्व (तद्+वन्+द्व)+धर्मा, दीनमुत्+सृज्य

श्रीकृष्ण की लीलारूप कर्णामृत के एक कण का भी जो रसास्वादन कर लेता है, उसके राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं। यहाँ तक कि बहुत से लोग तो अपनी दुःखमय- दुःख से सनी हुई घर- गृहस्थी छोड़कर अकिञ्चन हो जाते हैं, अपने पास कुछ भी संग्रह परिग्रह नहीं रखते और पक्षियों की तरह चुन चुनकर भीख माँगकर अपना पेट भरते हैं, दीन-दुनिया से जाते रहते हैं। फिर भी श्रीकृष्ण की छोड़ नहीं पाते। वास्तव में उसका रस, उसका चसका ऐसा ही है। यही दशा हमारी हो रही है।

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं(म्) श्रद्दधानाः(ख्)

कुलिकरुतमिवाज्ञाः(ख्) कृष्णवध्वो हरिण्यः ।

ददृशुरसकृदेतत्तन्नखस्पर्शतीव्र-

स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता ॥ 19॥

जिह्+मव्या+हृतं(म्), कुलिक+रुतमि+वाज्ञाः(ख्), कृष्ण+ वध्वो,

ददृशुर+ सकृदे+ तत्तन्+ नखस् + पर्शतीव्र, उपमन्+ त्रिन् , भण्यता+ मन्यवार्ता

जैसे कृष्णसार मृग की पत्नी भोली-भाली हरिनियाँ व्याध के सुमधुर गान का विश्वास कर लेती हैं और उसके

जाल में फँसकर मारी जाती है, वैसे ही हम भोली-भाली गोपियाँ भी उस लिया कृष्ण की कपट भरी मीठी-मीठी बातों में आकर उन्हें सत्य के समान मान बैठीं और उनके नखस्पर्श से होनेवाली कामव्याधि का बार-बार

अनुभव करती रहीं। इसलिये श्रीकृष्ण के दूत भौंरे ! अब इस विषय में तू और कुछ मत कह। तुझे कहना ही हो तो कोई दूसरी बात कहो।

प्रियसख पुनरागाः(फ्) प्रेयसा प्रेषितः(ख्) किं(वँ्)

वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ।

नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं(म्)

सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः(स्) साकमास्ते ॥ 20॥

किमनु+रुन्धे, माननी+योऽसि, कथमिहास्+मान्, दुस्त्यज+द्वन्द्वपार्श्वं(म्)

हमारे प्रियतम के प्यारे सखा ! जान पड़ता है तुम एक बार उधर जाकर फिर लौट आये हो। अवश्य ही हमारे प्रियतम ने मनाने के लिये तुम्हें भेजा होगा। प्रिय भ्रमर ! तुम सब प्रकार से हमारे माननीय हो। कहो, तुम्हारी क्या इच्छा है ? हमसे जो चाहो सो माँग लो। अच्छा, तुम सच बताओ, क्या हमें वहाँ ले चलना चाहते हो ? अजी, उनके पास जाकर लौटना बड़ा कठिन है। हम तो उनके पास जा चुकी हैं। परन्तु तुम हमें वहाँ ले जाकर करोगे क्या ? प्यारे भ्रमर ! उनके साथ- उनके वक्षःस्थल पर तो उनकी प्यारी पत्नी लक्ष्मीजी सदा रहती हैं न ? तब वहाँ हमारा निर्वाह कैसे होगा।

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते

स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूं(म्)श्च गोपान् ।

क्वचिदपि स कथा नः(ख्) किं(ङ्)करीणां(ङ्) गृणीते

भुजमगुरुसुगन्धं(म्) मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ॥ 21॥

मधुपुर्या+मार्यपुत्रोऽ+धुनाऽऽस्ते, भुजम+गुरुसु+गन्धं(म्), मूर्ध्न्यधा+स्यत्

अच्छा, हमारे प्रियतम के प्यारे दूत मधुकर! हमें यह बतलाओ कि आर्यपुत्र भगवान श्रीकृष्ण गुरुकुल से लौटकर मधुपुरी में अब सुख से तो हैं न ? क्या वे कभी नन्दबाबा, यशोदारानी, यहाँ के घर, सगे-सम्बन्धी और ग्वालबालों को भी याद करते हैं ? और क्या हम दासियों की भी कोई बात कभी चलाते हैं? प्यारे भ्रमर हमें यह भी बतलाओ कि कभी वे अपनी अगर के समान दिव्य सुगन्ध से युक्त भुजा हमारे सिरों पर रखेंगे ? क्या हमारे जीवन में कभी ऐसा शुभ अवसर भी आयेगा?

श्रीशुक उवाच

अथोद्धवो निशम्यैवं(ङ्), कृष्णदर्शनलालसाः ।

सान्त्वयन् प्रियसन्देशैर्- गोपीरिदमभाषत ॥ 22॥

अथोद्+धवो, निशम्+यैवं(ङ्), कृष्ण+दर्शन+लालसाः, सान्+त्वयन् ,प्रियसन्+देशैर् , गोपी+रिदमभा+षत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं-परीक्षित! गोपियाँ भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये अत्यन्त उत्सुक लालायित हो रही थीं, उनके लिये तड़प रही थीं। उनकी बातें सुनकर उद्धवजी ने उन्हें उनके प्रियतम का सन्देश सुनाकर सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा।

उद्धव उवाच

अहो यूयं(म्) स्म पूर्णार्था, भवत्यो लोकपूजिताः ।

वासुदेवे भगवति, यासामित्यर्पितं(म्) मनः ॥ 23॥

लोकपू+जिताः, यासा+मित्यर्+पितं(म्)

उद्धवजी ने कहा- अहो गोपियों ! तुम कृतकृत्य हो। तुम्हारा जीवन सफल है। देवियों! तुम सारे संसार के लिये पूजनीय हो क्योंकि तुमलोगों ने इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण को अपना हृदय, अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है।

दानव्रततपोहोम- जपस्वाध्यायसं(यँ)यमैः ।

श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः(ख्), कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ 24॥

दानव्रत+तपोहोम, जपस्+वाध्या+यसं(यँ)यमैः, श्रेयो+भिर्विविधैश्+चान्यैः(ख्)

दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, ध्यान, धारणा, समाधि और कल्याण के अन्य विविध साधनों के द्वारा भगवान की भक्ति प्राप्त हो, यही प्रयत्न किया जाता है।

भगवत्युत्तमश्लोके, भवतीभिरनुत्तमा ।

भक्तिः(फ्) प्रवर्तिता दिष्ट्या, मुनीनामपि दुर्लभा ॥ 25॥

भगवत्+युत्+तमश्+लोके, भवती+भिरनुत्तमा, मुनीना+मपि

यह बड़े सौभाग्य की बात है कि तुमलोगों ने पवित्र कीर्ति भगवान श्रीकृष्ण के प्रति वही सर्वोत्तम प्रेम भक्ति प्राप्त की है और उसी का आदर्श स्थापित किया है, जो बड़े-बड़े ऋषि मुनियों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है।

दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान्, स्वजनान् भवनानि च ।

हित्वावृणीत यूयं(यँ) यत्, कृष्णाख्यं(म्) पुरुषं(म्) परम् ॥ 26॥

हित्वा+वृणीत, कृष्णा+ख्यं(म्)

सचमुच यह कितने सौभाग्य की बात है कि तुमने अपने पुत्र, पति, देह, स्वजन और घरों को छोड़कर पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण को, जो सबके परम पति हैं, पति के रूप में वरण किया है।

सर्वात्मभावोऽधिकृतो, भवतीनामधोक्षजे ।

विरहेण महाभागा, महान् मेऽनुग्रहः(ख्) कृतः ॥ 27॥

सर्वात्+मभावोऽ+धिकृतो, भवती+नामधो+क्षजे

महाभाग्यवती गोपियों भगवान श्रीकृष्ण के वियोग से तुमने उन इन्द्रियातीत परमात्मा के प्रति वह भाव प्राप्त कर लिया है, जो सभी वस्तुओं के रूप में उनका दर्शन कराता है। तुम लोगों का वह भाव मेरे सामने भी प्रकट हुआ, यह मेरे ऊपर तुम देवियों की बड़ी ही दया है।

श्रूयतां(म्) प्रियसन्देशो, भवतीनां(म्) सुखावहः ।

यमादायागतो भद्रा, अहं(म्) भर्तू रहस्करः ॥ 28॥

प्रियसन्+देशो, सुखा+वहः, यमादा+यागतो, रहस्+करः

मैं अपने स्वामी का गुप्त काम करनेवाला दूत हूँ। तुम्हारे प्रियतम भगवान श्रीकृष्ण ने तुमलोगों को परम सुख देने के लिये यह प्रिय सन्देश भेजा है। कल्याणियों! वही लेकर मैं तुमलोगों के पास आया हूँ, अब उसे सुनो।

श्रीभगवानुवाच

भवतीनां(वँ) वियोगो मे, न हि सर्वात्मना क्वचित् ।

यथा भूतानि भूतेषु, खं(वँ) वाय्वग्निर्जलं(म्) मही ।

तथाहं(ञ्) च मनः(फ्)प्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥ 29॥

वाय्वग्+निर्जलं(म्), मनः(फ्)प्रा+णभूतेन्+द्रियगुणा+श्रयः

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है-मैं सबका उपादान कारण होने से सबका आत्मा हूँ, सब में अनुगत हूँ, इसलिये मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता। जैसे संसार के सभी भौतिक पदार्थों में आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी-ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, इन्हीं से सब वस्तुएँ बनी हैं, और यही उन वस्तुओं के रूप में हैं? वैसे ही मैं मन, प्राण, पंचभूत, इन्द्रिय और उनके विषयों का आश्रय हूँ। वे मुझ में हैं, मैं उनमें हूँ और सच पूछो तो मैं ही उनके रूप में प्रकट हो रहा हूँ।

आत्मन्येवात्मनाऽऽत्मानं(म्),सृजे हन्म्यनुपालये ।

आत्ममायानुभावेन, भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥ 30॥

आत्मन्+येवात्+मनाऽऽत्+मानं(म्), हन्+म्यनु+पालये, आत्ममाया+नुभावेन, भूतेन्+द्रियगुणात्+मना

मैं ही अपनी माया के द्वारा भूत, इन्द्रिय और उनके विषयों के रूप में होकर उनका आश्रय बन जाता हूँ तथा स्वयं निमित्त भी बनकर अपने आपको ही रचता हूँ, पालता हूँ और समेट लेता हूँ।

आत्मा ज्ञानमयः(श्) शुद्धो, व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ।

सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्- मायावृत्तिभिरीयते ॥ 31॥

व्यतिरिक्तोऽ+गुणान्+वयः, सुषुप्तिस्+वप्नजा+ग्रद्+भिर्, माया+वृत्तिभिरी+यते

आत्मा माया और माया के कार्यों से पृथक है। वह विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, जड़ प्रकृति, अनेक जीव तथा अपने ही अवान्तर भेदों से रहित सर्वथा शुद्ध है। कोई भी गुण उसका स्पर्श नहीं कर पाते। माया की तीन वृत्तियाँ हैं- सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत। इनके द्वारा वही अखण्ड, अनन्त बोधस्वरूप आत्मा कभी प्राज्ञ, तो कभी तैजस और कभी विश्व रूप से प्रतीत होता है।

येनेन्द्रियार्थान् ध्यायेत, मृषा स्वप्नवदुत्थितः ।

तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि, विनिद्रः(फ्) प्रत्यपद्यत ॥ 32॥

येनेन्+द्रियार्+थान् ,स्वप्न+वदुत्थितः, तन्+निरुन्+ध्या+दिन्द्रियाणि, प्रत्य+पद्यत

मनुष्य को चाहिये कि वह समझे कि स्वप्न में दीखने वाले पदार्थों कि समान ही जाग्रत- अवस्था में इन्द्रियों के विषय भी प्रतीत हो रहे हैं, वे मिथ्या हैं। इसलिये उन विषयों का चिन्तन करने वाले मन और इन्द्रियों को रोक ले और मानो सोकर उठा हो, इस प्रकार जगत के स्वाप्निक विषयों को त्यागकर मेरा साक्षात्कार करे।

एतदन्तः(स्) समाम्नायो, योगः(स्) सां(ङ्)ख्यं(म्) मनीषिणाम् ।

त्यागस्तपो दमः(स्) सत्यं(म्),समुद्रान्ता इवापगाः ॥ 33॥

समाम्+नायो, मनी+षिणाम् , त्यागस्+तपो

जिस प्रकार सभी नदियाँ घूम-फिरकर समुद्र में ही पहुँचती है, उसी प्रकार मनस्वी पुरुषों का वेदाभ्यास, योग-साधन, आत्मानात्म- विवेक, त्याग, तपस्या, इन्द्रिय संयम और सत्य आदि समस्त धर्म, मेरी प्राप्ति में ही समाप्त होते हैं। सबका सच्चा फल है मेरा साक्षात्कार; क्योंकि वे सब मन को निरुद्ध करके मेरे पास पहुँचाते हैं।

यत्त्वहं(म्) भवतीनां(वँ) वै, दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ।

मनसः(स्) सन्निकर्षार्थं(म्), मदनुध्यानकाम्यया ॥ 34॥

यत्+त्वहं(म्), सन्+निकर्+षार्थं(म्), मदनुध्या+नकाम्यया

गोपियों ! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम्हारे नयनों का ध्रुवतारा हूँ। तुम्हारा जीवन- सर्वस्व हूँ। किन्तु मैं जो तुमसे इतना दूर रहता हूँ, उसका कारण है। वह यही कि तुम निरन्तर मेरा ध्यान कर सको, शरीर से दूर रहने पर भी मन से तुम मेरी सन्निधि का अनुभव करो, अपना मन मेरे पास रखो।

यथा दूरचरे प्रेष्ठे, मन आविश्य वर्तते ।

स्त्रीणां(ञ्) च न तथा चेतः(स्), सन्निकृष्टेऽक्षिगोचरे ॥ 35॥

सन्+निकृष्टेऽ+क्षिगोचरे

क्योंकि स्त्रियों और अन्यान्य प्रेमियों का चित्त अपने परदेशी प्रियतम में जितना निश्चल भाव से लगा रहता है, उतना आँखों के सामने, पास रहनेवाले प्रियतम में नहीं लगता।

मय्यावेश्य मनः(ख्) कृत्स्नं(वँ), विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ।

अनुस्मरन्त्यो मां(न्) नित्य- मचिरान्मामुपैष्यथ ॥ 36॥

विमुक्ता+शेषवृत्ति, अनुस्+मरन्त्यो, मचिरान्+मामुपैष्+यथ

अशेष वृत्तियों से रहित सम्पूर्ण मन मुझमें लगाकर जब तुमलोग मेरा अनुस्मरण करोगी, तब शीघ्र ही सदा के लिये मुझे प्राप्त हो जाओगी।

या मया क्रीडता रात्र्यां(वँ), वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिताः ।

अलब्धरासाः(ख्) कल्याण्यो, माऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥ 37॥

अलब्+धरासाः(ख्), माऽऽपुर्+मद्वीर्+यचिन्+तया

कल्याणियों ! जिस समय मैंने वृन्दावन में शारदीय पूर्णिमा की रात्रि में रासक्रीडा की थी उस समय जो गोपियाँ स्वजनों के रोक लेने से व्रज में ही रह गयीं- मेरे साथ रास - विहार में सम्मिलित न हो सकीं, वे मेरी लीलाओं का स्मरण करने से ही मुझे प्राप्त हो गयी थीं।

श्रीशुक उवाच

एवं(म्) प्रियतमादिष्ट- माकर्ण्य व्रजयोषितः ।

ता ऊचुरुद्धवं(म्) प्रीतास्- तत्सन्देशागतस्मृतीः ॥ 38॥

प्रियतमा+दिष्ट, ऊचुरुद्+धवं(म्), तत्सन्+देशा+गतस्मृतीः

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित! अपने प्रियतम श्रीकृष्ण का यह संदेसा सुनकर गोपियों को बड़ा आनन्द हुआ

उनके संदेश से उन्हें श्रीकृष्ण के स्वरूप और एक-एक लीला की याद आने लगी। प्रेम से भरकर उन्होंने उद्धवजी से कहा।

गोप्य ऊचुः

दिष्ट्याहितो हतः(ख्) कं(म्)सो, यदूनां(म्) सानुगोऽघकृत् ।
दिष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः(ख्), कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥ 39॥

दिष्ट्याऽऽप्+तैर्+लब्ध+सर्वार्थैः(ख्), कुशल्यास्तेऽच्+युतोऽधुना

गोपियों ने कहा- उद्धवजी! यह बड़े सौभाग्य की और आनन्द की बात है कि यदुवंशियों को सतानेवाला पापी कंस अपने अनुयायियों के साथ मारा गया। यह भी कम आनन्द की बात नहीं है कि श्रीकृष्ण के बन्धु बान्धव और गुरुजनों के सारे मनोरथ पूर्ण हो गये तथा अब हमारे प्यारे श्यामसुन्दर उनके साथ सकुशल निवास कर रहे हैं।

कच्चिद् गदाग्रजः(स्) सौम्य, करोति पुरयोषिताम् ।
प्रीतिं(न्) नः(स्) स्निग्धसंव्रीड- हासोदारेक्षणार्चितः ॥ 40॥

पुरयो+षिताम्, स्निग्ध+सव्रीड, हासोदारे+क्षणार्चितः

किन्तु उद्धवजी ! एक बात आप हमें बतलाइये। 'जिस प्रकार हम अपनी प्रेम भरी लजीली मुसकान और उन्मुक्त चितवन से उनकी पूजा करती थीं और वे भी हमसे प्यार करते थे, उसी प्रकार मथुरा की स्त्रियों से भी वे प्रेम करते हैं या नहीं?'

कथं(म्) रतिविशेषज्ञः(फ्), प्रियश्च वरयोषिताम ।
नानुबध्येत तद्वाक्यैर्- विभ्रमैश्चानुभाजितः ॥ 41॥

रतिविशे+षज्ञः(फ्), वरयो+षिताम, नानुबध्+येत, तद्+वाक्यैर्, विभ्रमैश्+चानुभा+जितः

तब तक दूसरी गोपी बोल उठी- 'अरी सखी! हमारे प्यारे श्यामसुन्दर तो प्रेम की मोहिनी कला के विशेषज्ञ हैं। सभी श्रेष्ठ स्त्रियाँ उनसे प्यार करती हैं, फिर भला जब नगर की स्त्रियाँ उनसे मीठी-मीठी बातें करेंगी और हाव-भाव से उनकी ओर देखेंगी तब वे उन पर क्यों न रीझेंगे ?

अपि स्मरति नः(स्) साधो, गोविन्दः(फ्) प्रस्तुते क्वचित् ।
गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां(ङ्), ग्राम्याः(स्) स्वैरकथान्तरे ॥ 42॥

गोष्ठी+मध्ये , पुरस्+त्रीणां(ङ्), स्वै+रकथान्+तरे

दूसरी गोपियाँ बोलीं- 'साधो! आप यह तो बतलाइये कि जब कभी नागरी नारियों की मण्डली में कोई बात चलती है और हमारे प्यारे स्वच्छन्द रूप से, बिना किसी संकोच के जब प्रेम की बातें करने लगते हैं, तब क्या कभी प्रसंगवश हम गँवार ग्वालिनों- की भी याद करते हैं ?

ताः(ख्) किं(न्) निशाः(स्) स्मरति यासु तदा प्रियाभिर्-
वृन्दावने कुमुदकुन्दशशां(ङ्)करम्ये ।
रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्या-

मस्माभिरीडितमनोज्ञकथः(ख्) कदाचित् ॥ 43॥

कुमुदकुन्द+शशां(ङ्)करम्ये, क्कणच्+चरणनू+पुररा+सगोष्ठ्या, मस्मा+भिरी+डितमनो+ज्ञकथः(ख्)

कुछ गोपियों ने कहा -'उद्धवजी क्या कभी श्रीकृष्ण उन रात्रियों का स्मरण करते हैं, जब कुमुदिनी तथा कुन्द के पुष्प खिले हुए थे, चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी और वृन्दावन अत्यन्त रमणीय हो रहा था। उन रात्रियों में ही उन्होंने रास-मण्डल बनाकर हमलोगों के साथ नृत्य किया था। कितनी सुन्दर थी वह रास लीला ! उस समय हमलोगों के पैरों के नूपुर रुनझुन रुनझुन बज रहे थे। हम सब सखियाँ उन्हीं की सुन्दर-सुन्दर लीलाओं का गान कर रही थीं और वे हमारे साथ नाना प्रकार के विहार कर रहे थे।

अप्येष्यतीह दाशार्हस्- तप्ताः(स्) स्वकृतया शुचा ।

सं(ञ्)जीवयन् नु नो गात्रैर्- यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥ 44॥

अप्येष्+यतीह, सं(ञ्)जी+वयन्, वनमम्+बुदैः

कुछ दूसरी गोपियाँ बोल उठीं- 'उद्धवजी ! हम सब तो उन्हीं के विरह की आग से जल रही हैं। देवराज इन्द्र जैसे जल बरसाकर वन को हरा-भरा कर देते हैं, उसी प्रकार क्या कभी श्रीकृष्ण भी अपने कर स्पर्श आदि से हमें जीवनदान देने के लिये यहाँ आवेंगे ?

कस्मात् कृष्ण इहायाति, प्राप्तराज्यो हताहितः ।

नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य, प्रीतः(स्) सर्वसुहृद्वृतः ॥ 45॥

नरेन्द्र+कन्या, उद्+वाह्य, सर्व+सुहृद्वृतः

तब तक एक गोपी ने कहा- 'अरी सखी! अब तो उन्होंने शत्रुओं को मारकर राज्य पा लिया है; जिसे देखो, वही उनका सुहृद् बना फिरता है। अब वे बड़े-बड़े नरपतियों की कुमारियों से विवाह करेंगे, उनके साथ आनन्दपूर्वक रहेंगे; यहाँ हम गँवारिनों के पास क्यों आयेंगे ?

किमस्माभिर्वनौकोभि- रन्याभिर्वा महात्मनः ।

श्रीपतेराप्तकामस्य, क्रियेतार्थः(ख्) कृतात्मनः ॥ 46॥

किमस्मा+भिर्वनौकोभि, श्रीपतेराप्+तका+मस्य

दूसरी गोपीने कहा- 'नहीं सखी! महात्मा श्रीकृष्ण तो स्वयं लक्ष्मीपति हैं। उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण ही हैं, वे कृतकृत्य हैं। हम वनवासिनी ग्वालिनों अथवा दूसरी राजकुमारियों से उनका कोई प्रयोजन नहीं है। हमलोगों के बिना उनका कौन-सा काम अटक रहा है।

परं(म्) सौख्यं(म्) हि नैराश्यं(म्), स्वैरिण्यप्याह पिं(ङ्)गला ।

तज्जानतीनां(न्) नः(ख्) कृष्णे, तथाप्याशा दुरत्यया ॥ 47॥

स्वै+रिण्यप्+याह, तज्जा+नतीनां(न्), तथाप्+याशा, दुरत्+यया

देखो वेश्या होने पर भी पिंगला ने क्या ही ठीक कहा है-संसार में किसी की आशा न रखना ही सबसे बड़ा सुख है।' यह बात हम जानती हैं, फिर भी हम भगवान् श्रीकृष्ण के लौटने की आशा छोड़ने में असमर्थ हैं। उनके शुभागमन की आशा ही तो हमारा जीवन है।

क उत्सहेत सन्त्यक्तु-मुत्तमश्लोकसं(वृँ)विदम् ।

अनिच्छतोऽपि यस्य श्री- रं(ङ्)गान्न च्यवते क्वचित् ॥ 48॥

सन्+त्यक्तु, मुत्तमश्+लोकसं(वँ)विदम् ,अनिच्+छतोऽपि

हमारे प्यारे श्यामसुन्दर ने, जिनकी कीर्ति का गान बड़े-बड़े महात्मा करते रहते हैं, हमसे एकान्त में जो मीठी-मीठी प्रेम की बातें की हैं उन्हें छोड़ने का, भुलाने का उत्साह भी हम कैसे कर सकती हैं ? देखो तो, उनकी इच्छा न होने पर भी स्वयं लक्ष्मीजी उनके चरणों से लिपटी रहती हैं, एक क्षण के लिये भी उनका अंग-संग छोड़कर कहीं नहीं जातीं।

सरिच्छैलवनोद्देशा, गावो वेणुरवा इमे ।

सं(ङ्)कर्षणसहायेन, कृष्णेनाचरिताः(फ्) प्रभो ॥ 49॥

सरिच्छै+लवनोद्देशा, सं(ङ्)कर्षण+ सहा+येन, कृष्णेना+चरिताः(फ्)

उद्धवजी ! यह वही नदी है, जिसमें वे विहार करते थे। यह वही पर्वत है, जिसके शिखर पर चढ़कर वे बाँसुरी बजाते थे। ये वे ही वन है, जिनमें वे रात्रि के समय रासलीला करते थे, और ये वे ही गौएँ हैं, जिनको चराने के लिये वे सुबह-शाम हमलोगों को देखते हुए जाते-आते थे। और यह ठीक वैसी ही वंशी की तान हमारे कानों में गूँजती रहती है, जैसी वे अपने अधरों के संयोग से छेड़ा करते थे। बलरामजी के साथ श्रीकृष्ण ने इन सभी का सेवन किया है।

पुनः(फ्) पुनः(स्) स्मारयन्ति, नन्दगोपसुतं(म्) बत ।

श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्- विस्मर्तुं(न्) नैव शक्नुमः ॥ 50॥

स्मा+रयन्ति, नन्दगो+पसुतं(म्), श्री+निकेतैस्+तत्पदकैर्

यहाँ का एक-एक प्रदेश, एक-एक धूलिकण उनके परम सुन्दर चरणकमलों से चिह्नित है। इन्हें जब-जब हम देखती हैं, सुनती हैं—दिनभर यही तो करती रहती हैं-तब-तब वे हमारे प्यारे श्यामसुन्दर नन्दनन्दन को हमारे नेत्रों के सामने लाकर रख देते हैं। उद्धवजी! हम किसी भी प्रकार मरकर भी उन्हें भूल नहीं सकतीं।

गत्या ललितयोदार- हासलीलावलोकनैः ।

माध्व्या गिरा हृतधियः(ख्), कथं(न्) तं(वँ) विस्मरामहे ॥ 51॥

हासलीला+वलोकनैः, विस्+मरा+महे

उनकी वह हंस की-सी सुन्दर चाल, उन्मुक्त हास्य, विलासपूर्ण चितवन और मधुमयी वाणी ! आह ! उन सबने हमारा चित्त चुरा लिया है, हमारा मन हमारे वश में नहीं है; अब हम उन्हें भूलें तो किस तरह?

हे नाथ हे रमानाथ, व्रजनाथार्तिनाशन ।

मग्नमुद्धर गोविन्द, गोकुलं(वँ) वृजिनार्णवात् ॥ 52॥

व्रजनाथार्+तिनाशन, मग्न+मुद्+धर, वृजिनार्+णवात्

हमारे प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम्हीं हमारे जीवन के स्वामी हो, सर्वस्व हो। प्यारे तुम लक्ष्मीनाथ हो तो क्या हुआ ? हमारे लिये तो व्रजनाथ ही हो। हम व्रज गोपियों के एकमात्र तुम्हीं सच्चे स्वामी हो। श्यामसुन्दर ! तुमने बार-बार हमारी व्यथा मिटायी है, हमारे संकट काटे हैं। गोविन्द ! तुम गौओं से बहुत प्रेम करते हो। क्या हम गौएँ नहीं हैं ? तुम्हारा यह सारा गोकुल जिसमें ग्वालबाल, माता-पिता, गौएँ और हम गोपियाँ सब कोई हैं—दुःख के अपार सागर में डूब रहा है। तुम इसे बचाओ, आओ, हमारी रक्षा करो।

श्रीशुक उवाच

ततस्ताः(ख्) कृष्णसन्देशैर्- व्यपेतविरहज्वराः ।

उद्धवं(म्) पूजयां(ञ्)चक्रुर्-ज्ञात्वाऽऽत्मानमधोक्षजम् ॥ 53॥

कृष्णसन्+देशैर् , व्यपे+तविरहज्+वराः, पूजयां(ञ्)+चक्रुर्, ज्ञात्वाऽऽत्+मानमधो+क्षजम्

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित । भगवान श्रीकृष्ण का प्रिय सन्देश सुनकर गोपियों के विरह की व्यथा शान्त हो गयी थी। वे इन्द्रियातीत भगवान श्रीकृष्ण को अपने आत्मा के रूप में सर्वत्र स्थित समझ चुकी थीं। अब वे बड़े प्रेम और आदर से उद्धवजी का सत्कार करने लगी।

उवास कतिचिन्मासान्, गोपीनां(वँ) विनुदञ्छुचः ।

कृष्णलीलाकथां(ङ्) गायन्, रमयामास गोकुलम् ॥ 54॥

कतिचिन्+मासान् ,विनुदञ्+छुचः, कृष्ण+लीला+कथां(ङ्)

उद्धवजी गोपियों की विरह व्यथा मिटाने के लिये कई महीनों वहीं रहे। वे भगवान श्रीकृष्ण की अनेकों लीलाएँ और बातें सुना सुनाकर व्रजवासियों को आनन्दित करते रहते।

यावन्त्यहानि नन्दस्य, व्रजेऽवात्सीत् स उद्धवः ।

व्रजौकसां(ङ्) क्षणप्रायाण्- यासन् कृष्णस्य वार्तया ॥ 55॥

नन्दबाबा के व्रज में जितने दिनों तक उद्धवजी रहे, उतने दिनों तक भगवान श्रीकृष्ण को लीला की चर्चा होते रहने के कारण व्रजवासियों को ऐसा जान पड़ा, मानो अभी एक ही क्षण हुआ हो।

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्- वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान् ।

कृष्णं(म्) सं(म्)स्मारयन् रेमे, हरिदासो व्रजौकसाम् ॥ 56॥

सरिद्+वनगिरि+द्रोणीर्, सं(म्)स्मा+रयन्, व्रजौ+कसाम्

भगवान के परमप्रेमी भक्त उद्धवजी कभी नदी तट पर जाते, कभी वनों में विहरते और कभी गिरिराज को घाटियों में विचरते। कभी रंग-बिरंगे फूलों से लदे हुए वृक्षों में ही रम जाते और यहाँ भगवान श्रीकृष्ण ने कौन-सी लीला की है, यह पूछ-पूछकर व्रजवासियों को भगवान श्रीकृष्ण और उनकी लीला के स्मरण में तन्मय कर देते।

दृष्ट्वैवमादि गोपीनां(ङ्), कृष्णावेशात्मविक्लवम् ।

उद्धवः(फ्) परमप्रीतस्-ता नमस्यन्निदं(ञ्) जगौ ॥ 57॥

दृष्ट्वै+वमादि, कृष्णा+वेशात्+मविक्+लवम्, नमस्+यन्+निदं(ञ्)

उद्धवजी ने व्रज में रहकर गोपियों की इस प्रकार की प्रेम-विकलता तथा और भी बहुत-सी प्रेम चेष्टाएँ देखीं। उनकी इस प्रकार श्रीकृष्ण में तन्मयता देखकर वे प्रेम और आनन्द से भर गये। अब वे गोपियों को नमस्कार करते हुए इस प्रकार गान करने लगे।

एताः(फ्) परं(न्) तनुभृतो भुवि गोपवध्वो

गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।

वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं(ञ्) च

किं(म्) ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥ 58॥

निखिलात्+मनि, ब्रह्मजन्म+भिरनन्त+कथा+रसस्य

'इस पृथ्वी पर केवल इन गोपियों का ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है; क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान श्रीकृष्ण के परम प्रेममय दिव्य महाभाव में स्थित हो गयी हैं। प्रेम की यह ऊँची-से-ऊँची स्थिति संसार के भय से भीत मुमुक्षुजनों के लिये ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े मुनियों-मुक्त पुरुषों तथा हम भक्तजनों के लिये भी अभी वाञ्छनीय ही है। हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है, जिन्हें भगवान श्रीकृष्ण की लीला-कथा के रस का चसका लग गया है, उन्हें कुलीनता की, द्विजाति समुचित संस्कार की और बड़े-बड़े यज्ञ-यागों में दीक्षित होने की क्या आवश्यकता है? अथवा यदि भगवान की कथा का रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई, तो अनेक महाकल्पों तक बार-बार ब्रह्मा होने से ही क्या लाभ?

क्वेमाः(स्) स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः(ख्)

कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।

नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्-

छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ 59॥

वनचरीर्+व्यभिचा+रदुष्टाः(ख्), नन्वीश्+वरोऽ+नुभजतोऽ+विदुषोऽपि, छ्रेयस्+तनोत्+यगदराज

कहाँ ये वनचरी आचार, ज्ञान और जाति से हीन गाँव की गँवार ग्वालिनें और कहाँ सच्चिदानन्दघन भगवान श्रीकृष्ण में यह अनन्य परम प्रेम ! अहो, धन्य है ! धन्य है ! इससे सिद्ध होता है कि कोई भगवान के स्वरूप और रहस्य को न जानकर भी उनसे प्रेम करे, उनका भजन करे, तो वे स्वयं अपनी शक्ति से अपनी कृपा से उसका परम कल्याण कर देते हैं; ठीक वैसे ही, जैसे कोई अनजान में भी अमृत पी ले तो वह अपनी वस्तु-शक्ति से ही पीनेवाले को अमर बना देता है।

नायं(म्) श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः(फ्) प्रसादः(स्)

स्वर्योषितां(न्) नलिनगन्धरुचां(ङ्) कुतोऽन्याः ।

रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-

लब्धाशिषां(यँ) य उदगाद् व्रजबल्लवीनाम् ॥ 60॥

नितान्+तरतेः(फ्), स्वर्+योषितां(न्), नलिन+गन्ध+रुचां(ङ्),

रासोत्+सवेऽस्य, भुजदण्ड+गृही+तकण्ठ, लब्धा+शिषां(यँ), व्रजबल्+लवीनाम्

भगवान श्रीकृष्ण ने रासोत्सव के समय इन व्रजाङ्गनाओं के गले में बाँह डाल-डालकर इनके मनोरथ पूर्ण किये। इन्हें भगवान ने जिस कृपा -प्रसाद का वितरण किया, इन्हें जैसा प्रेमदान किया, वैसा भगवान की परम प्रेमवती नित्यसङ्गिनी वक्षःस्थल पर विराजमान लक्ष्मीजी को भी नहीं प्राप्त हुआ। कमल की-सी सुगन्ध और कान्ति से युक्त देवाङ्गनाओं को भी नहीं मिला। फिर दूसरी स्त्रियों की तो बात ही क्या करें?

आसामहो चरणरेणुजुषामहं(म्) स्यां(वँ)

वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।

या दुस्त्यजं(म्) स्वजनमार्यपथं(ञ्) च हित्वा

भेजुर्मुकुन्दपदवीं(म्) श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ 61॥

चरणरे+णुजुषा+महं(म्), गुल्मलतौ+षधीनाम्, दुस्+त्यजं(म्),

स्वजनमार्+यपथं(ञ्), भेजुर्मुकुन्+दपदवीं(म्), श्रुतिभिर्+विमृग्+याम्

मेरे लिये तो सबसे अच्छी बात यही होगी कि मैं इस वृन्दावन धाम में कोई झाड़ी, लता अथवा ओषधि-जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ! अहा! यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा, तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओं की चरण धूलि निरन्तर सेवन करने के लिये मिलती रहेगी। इनकी चरण-रज में स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। धन्य हैं ये गोपियाँ देखो तो सही, जिनको छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन स्वजन सम्बन्धियों तथा लोक-वेद की आर्य मर्यादा का परित्याग करके इन्होंने भगवान की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनका परम प्रेम प्राप्त कर लिया है—औरों की तो बात ही क्या - भगवद्वाणी, उनकी निःश्वास रूप समस्त श्रुतियाँ, उपनिषदें भी अब तक भगवान के परम प्रेममय स्वरूप को ढूंढ़ती ही रहती हैं, प्राप्त नहीं कर पातीं।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामैर्-

योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ।

कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं(न्)

न्यस्तं(म्) स्तनेषु विजहुः(फ्) परिरभ्य तापम् ॥ 62॥

श्रियार्+चितमजा+दिभिराप्+तकामैर्, योगेश्+वरै+रपि,

रासगोष्+ठ्याम्, भगवतश्+चरणा+रविन्दं(न्)

स्वयं भगवती लक्ष्मीजी जिन की पूजा करती रहती है, ब्रह्मा, शंकर आदि परम समर्थ देवता, पूर्ण काम आत्मा राम और बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदय में जिन का चिन्तन करते रहते हैं, भगवान श्रीकृष्ण के उन्हीं चरणार विन्दों को रास लीला के समय गोपियों ने अपने वक्षःस्थल पर रखा और उनका आलिंगन करके अपने हृदय की जलन, विरह- व्यथा शान्त की।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां(म्),पादरेणुमभीक्ष्णशः ।

यासां(म्) हरिकथोद्गीतं(म्), पुनाति भुवनत्रयम् ॥ 63॥

नन्दव्रजस्+त्रीणां(म्), पादरे+णुमभी+क्ष्णशः, हरिकथोद्+गीतं(म्)

नन्दबाबा के व्रज में रहनेवाली गोपांगनाओं की चरण धूलि को मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ— उसे सिर पर चढ़ाता हूँ। अहा ! इन गोपियों ने भगवान श्रीकृष्ण की लीला कथा के सम्बन्ध में जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकों को पवित्र कर रहा है और सदा-सर्वदा पवित्र करता रहेगा।

श्रीशुक उवाच

अथ गोपीरनुज्ञाप्य, यशोदां(न्) नन्दमेव च ।

गोपानामन्त्र्य दाशार्हो, यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ 64॥

गोपी+रनुज्ञाप्य, गोपाना+मन्त्र्य, यास्यन्+नारुरुहे

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- परीक्षित्! इस प्रकार कई महीनों तक व्रज में रहकर उद्धवजी ने अब मथुरा जाने के

लिये गोपियों से, नन्दबाबा और यशोदा मैया से आज्ञा प्राप्त की। ग्वाल-बालों से विदा लेकर वहाँ से यात्रा करने के लिये वे रथ पर सवार हुए।

तं(न्) निर्गतं(म्) समासाद्य, नानोपायनपाणयः ।

नन्दादयोऽनुरागेण, प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥ 65॥

नानोपा+यनपा+णयः, नन्दा+दयोऽ+नुरागेण, प्रावो+चन्+नश्रुलो+चनाः

जब उनका रथ व्रज से बाहर निकला, तब नन्दबाबा आदि गोपगण बहुत-सी भेंटकी सामग्री लेकर उनके पास आये और आँखों में आँसू भरकर उन्होंने बड़े प्रेम से कहा।

मनसो वृत्तयो नः(स्) स्युः(ख्) कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः ।

वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां(ङ्) कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥ 66॥

कृष्णपादाम्+बुजाश्रयाः, वाचोऽ+भिधा+यिनीर्+नाम्नां(ङ्), कायस्+तत्प्रह्+वणा+दिषु

'उद्धवजी ! अब हम यही चाहते हैं कि हमारे मन की एक-एक वृत्ति, एक-एक संकल्प श्रीकृष्ण के चरण कमलों के ही आश्रित रहे। उन्हीं की सेवा के लिये उठे और उन्हीं में लगी भी रहे। हमारी वाणी नित्य निरन्तर उन्हीं के नामों का उच्चारण करती रहे और शरीर उन्हीं को प्रणाम करने, उन्हीं की आज्ञा-पालन और सेवा में लगा रहे।

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां(यँ), यत्र क्वापीश्वरेच्छया ।

मं(ङ्)गलाचरितैर्दानै, रतिर्नः(ख्) कृष्ण ईश्वरे ॥ 67॥

कर्मभिर्+भ्राम्+यमाणानां(यँ), क्वापीश्+वरेच्छया, मं(ङ्)गला+चरितैर्दानै

उद्धवजी! हम सच कहते हैं, हमें मोक्ष की इच्छा बिलकुल नहीं है। हम भगवान की इच्छा से अपने कर्मों के अनुसार चाहे जिस योनि में जन्म लें -वहाँ शुभ आचरण करें, दान करें और उसका फल यही पावें कि हमारे अपने ईश्वर श्रीकृष्ण में हमारी प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती रहे।

एवं(म्) सभाजितो गोपैः(ख्), कृष्णभक्त्या नराधिप ।

उद्धवः(फ्) पुनरागच्छन्- मथुरां(ङ्) कृष्णपालिताम् ॥ 68॥

पुनरा+गच्छन्, कृष्णपा+लिताम्

प्रिय परीक्षित् ! नन्दबाबा आदि गोपों ने इस प्रकार श्रीकृष्ण-भक्ति के द्वारा उद्धवजी का सम्मान किया। अब वे भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा सुरक्षित मथुरा पुरी में लौट आये।

कृष्णाय प्रणिपत्याह, भक्त्युद्रेकं(वँ) व्रजौकसाम् ।

वसुदेवाय रामाय, राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥ 69॥

प्रणिपत्+याह, भक्+त्युद्रेकं(वँ), व्रजौ+कसाम् , चोपा+यनान्+यदात्

वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम किया और उन्हें व्रजवासियों की प्रेममयी भक्ति का उद्रेक, जैसा उन्होंने देखा था, कह सुनाया। इसके बाद नन्दबाबा ने भेंट की जो-जो सामग्री दी थी वह उनको, वसुदेवजी, बलरामजी और राजा उग्रसेन को दे दी।

॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)
दशमस्कन्धे पूर्वार्धे उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिं(म्)शोऽध्यायः॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥